# * श्रीचक्र अथवा श्रीयन्त्र *

**बिन्दुत्रिकोणवसुकोणदशारयुग्म- मन्वस्त्रनागदलसंयुतषोडशारम् ।**
**वृत्तत्रयञ्च धरणीसदनत्रयञ्च, श्रीचक्रमेतदुदितं परदेवतायाः ।।**

अर्थात् **'श्रीयन्त्र बिन्दु-त्रिकोण, अष्टकोण, अन्तर्दशार, बहिर्दशार, चतुर्दशार, अष्टदल, षोडशदल, उसके बाहर तीन वृत्त और त्रिरेखात्मक (तीन रेखाओं वाला) भूपुर से बना हुआ है।'** इस यन्त्र में ४३ त्रिकोण, २८ मर्मस्थान और २४ सन्धियाँ होती हैं। तीन रेखाओं के मिलने के स्थान को **'मर्म'** और दो रेखाओं के मिलने के स्थान को **'सन्धि'** कहते हैं।

इस श्रीयन्त्र में चार ऊर्ध्वमुख त्रिकोण होते हैं जिनको श्रीकण्ठ अथवा शिवत्त्व या शिव-त्रिकोण कहते हैं। अतएव भगवान शंकराचार्य ने सौन्दर्यलहरी ११ में **''चतुर्भिः श्रीकण्ठैः शिवयुवतिभिः पंचभिरपि''**- ऐसा लिखा है। श्रीयन्त्र नौ चक्रों से बना है, जिनमें से चार 'शिवचक्र' हैं और पाँच 'शक्तिचक्र' है। अतएव लिखा है-

**चतुर्भिः शिवचक्रैश्च शक्तिचक्रैश्च पंचभिः ।**
**नवचक्रैश्च संसिद्धं श्रीचक्रं शिवयोर्वपुः ।।**

इन नौ शिव-शक्ति चक्रों में त्रिकोण, अष्टकोण, दशारद्वय (दो दशार) और चतुर्दशार- ये पाँच शक्तिचक्र कहलाते हैं। बिन्दु-चक्र, अष्टदल कमल, षोडशदल कमल और चतुरस्त्र- ये चार **'शिवचक्र'** कहे जाते हैं। बिन्दुचक्र त्रिकोण के साथ, अष्टदल कमल अष्टार (अष्टकोण) के साथ, षोडशदल कमल अन्तर्दशार और बहिर्दशार के साथ तथा भूपुर चतुर्दशार (चतुर्दशकोण) के साथ श्लिष्ट हैं। अतएव उपरिपरिगणित शिव और शक्तिचक्रों का परस्पर अविनाभाव-सम्बन्ध है, अर्थात् एक दूसरे के बिना ये नहीं होते हैं। इसी प्रकार त्रिकोण-शक्तिरूप और त्रिकोण के भीतर का बिन्दु **'पर-शिव'** है। अतएव बिन्दु-चक्र के बिन्दु और त्रिकोण का अर्थात् महाकामेश्वर और महाकामेश्वरी (शिव और शक्ति का) परस्पर अविनाभाव-सम्बन्ध है, अर्थात् वे परस्पर मिले हुये हैं। श्रीविद्योपासकों के लिये इन शिव और शक्ति चक्रों का विभाग अवश्यमेव ज्ञातव्य है। इस विभाग के ज्ञान के बिना श्रीयन्त्र की पूजा करना निष्फल है। अतएव लिखा है-

**'एवं विभागमज्ञात्वा श्रीचक्रं यः समर्चयेत् ।**
**न तत्फलमवाप्नोति ललिताम्बा न तुष्यति ।।'**

*(ब्रह्मपुराण)*

श्रीयन्त्र में परस्परान्तर्गत जो नौ त्रिकोण (४ ऊर्ध्वमुख और ५ अधोमुख) हैं, वे शिवबिन्दु की मूलप्रकृति द्वारा बने हैं। नवम् त्रिकोण मूल प्रकृति है और आठ त्रिकोण विकृतियाँ हैं, जो अपनी उत्पत्ति से प्रकृति हैं।

## नव-चक्र

श्रीयन्त्र में १ चतुरस्त्र, २ षोडशदल, ३ अष्टदल, ४ चतुर्दशार, ५ बहिर्दशार, ६ अन्तर्दशार, ७ अष्टार, ८ त्रिकोण और ९ बिन्दु हैं- इनके नाम क्रमशः -

१ त्रैलोक्यमोहन, २ सर्वाशापरिपूरक, ३ सर्वसंक्षोभण, ४सर्वसौभाग्य-दायक, ५ सर्वार्थसाधक, ६ सर्वरक्षाकर, ७ सर्वरोगहर, ८ सर्वसिद्धिप्रद, और ९ सर्वानन्दमय हैं।

## नवचक्रेश्वरी

इन नौ चक्रों की नव चक्रेश्वरी ये हैं- यथाक्रम-

**१ त्रिपुरा, २ त्रिपुरेशी, ३ त्रिपुरसुन्दरी, ४ त्रिपुरवासिनी, ५ त्रिपुराश्री, ६ त्रिपुरमालिनी, ७ त्रिपुरासिद्धा, ८ त्रिपुराम्बा, और ९ महात्रिपुरसुन्दरी।**

त्रैलोक्यमोहनचक्र की प्रथम रेखा में अर्थात् चतुरस्त्र की प्रथम रेखा में- अणिमादि अष्टसिद्धियों का पूजन होता है। ये सिद्धियाँ रक्तवर्णा हैं तथा चन्द्रकला से विभूषित हैं। इनके दो हाथ हैं, दक्षिण हस्त में भक्ताभिलाषापूर्ति के लिये चिन्तामणियों का समूह है और वामहस्त में अभयमुद्रा है। तथाहि-

**चिन्तामणिप्रचयदक्षिणपाण्यभीति - दानोल्लसत्कमलकोमलवामपाणीः।**
**रक्तद्युतीः शशिधराः प्रकटाणिमाद्या-स्त्रैलोक्यमोहनगताः परिपूजयामि॥**

*(कामकल्पतरुस्तव० १२)*

त्रैलोक्यमोहनचक्र की शक्तियाँ '**प्रकटयोगिनी**' कहलाती हैं। चतुरस्त्र की मध्यरेखा में ब्राह्मी आदि शक्तियाँ अर्चित की जाती हैं। ये शक्तियाँ तमाल के समान श्यामला हैं और रक्तवस्त्रों से सुसज्जित हैं। लाल कमल और अमृतपूर्ण पान-पात्र करों में धारण करती हैं तथा सुन्दर आभूषण धारण करने वाली हैं। यथा-

**रक्तोत्पलामृतकपालधराः कराभ्यामष्टौ तमालदलकोमलनीलदेहाः।**
**ब्राह्म्यादिका रुचिरभूषणरक्तवस्त्रा, मातर्द्वितीयचतुरस्त्रगता भजामि॥**

*(कामकल्पतरुस्तव० १३)*

चतुरस्र की तृतीय रेखा में सर्वसंक्षोभिणी आदि मुद्रा शक्तियों की पूजा होती है। ये शक्तियाँ अपने दोनों हाथों में पाश और अङ्कुश धारण करती हैं और तरूण तरणि के समान कान्तिमती हैं, यथा-

**पाशाङ्कुशांकितयथायथबन्धबद्ध - मुद्राविमुद्रितकरं तरुणारुणाभम् ।**
**श्रीमत्तृतीयचतुरस्त्रगसर्वपूर्व - संक्षोभपूर्वदशदैवतमर्चयामि ।।**

*(कामकल्पतरुस्तव० १४)*

दूसरे आवरण में '**सर्वाशापरिपूरकचक्र**' में अमृताकर्षिणी आदि नित्या कला-शक्तियों का पूजन होता है। ये शक्तियाँ '**गुप्तयोगिनी**' कहलाती हैं। ये रक्तवर्णा हैं और पाश तथा अंकुश अपनें हाथों में धारण करती हैं।

**शोणाः सपाशसृणिपाणियुगाभिरामाः, कामादिकर्षणमुखाः स्वरगाश्च नित्याः।**
**गुप्ताः कलानिधिकलाः खलु सर्ववाञ्छा- सम्पूर्णषोडशदले परिपूजयामि ।।**

*(कामकल्पतरुस्तव० १५)*

सर्वसौभाग्यदायक चक्र में (चतुर्दशार, चौदह त्रिकोणों में) सर्वसंक्षोभिणी आदि शक्तियों का समर्चन किया जाता है। ये शक्तियाँ 'सम्प्रदाययोगिनी' कहलाती हैं। ये देवियाँ रक्तवर्णा हैं तथा इनके हाथों में धनुष और बाण विद्यमान हैं। *तथाहि-*

**शोणाः सबाणधनुषः खलु सर्वपूर्व - संक्षोभणादिकचतुर्दशदेवतास्ताः।**
**सत्सम्प्रदायविधिगाः प्रयजामि सर्व - सौभाग्यदायकचतुर्दश कोणचक्रे ।।**

*(कामकल्पतरुस्तव० १७)*

सर्वार्थसाधकचक्र (दशावतारवाले विष्णु का स्वरूप) बहिर्दशारचक्र में सर्व-सिद्धिप्रदा आदि देवियों की पूजा होती है। ये देवियाँ 'कुलोत्तीर्ण योगिनियाँ' नाम से पुकारी जातीहैं। ये शक्तियाँ शुभ्र वस्त्र पहने हुये हैं और अपने करों से वर और अभय मुद्रा दिखाती हैं। *तथाहि-*

**शुभ्रा वराभयकराः खलु सर्वपूर्व - सिद्धिप्रदाद्यदशकाद्भुतशक्तिपंक्तीः।**
**सर्वार्थसाधकबहिर्दशकोणचक्रे सम्पूजयामि कुलकौलिनिगर्भिणीस्ताः ।।**

*(कामकल्पतरुस्तव० १८)*

सर्वरक्षाकरचक्र में (अग्निस्वरूप अन्तर्दशार में) सर्वज्ञा आदि शक्तियों का पूजन करते हैं। इन शक्तियों को '**निगर्भयोगिनी**' कहते हैं। ये कर्पूर के समान रुचिर (गौर) वर्ण हैं और इनके करों में अक्षमाला (जपमाला) और पुस्तक सुशोभित हैं। तथाहि-

**कर्पूरपूररुचिरा रुचिराक्षमाला:,श्रीज्ञानपुस्तकभृतोऽति निगर्भदेवी: ।**
**सर्वार्थरक्षणकरीर्दशकोणचक्रे, सर्वज्ञकादिप्रमुखा दश पूजयामि ।।**

(कामकल्पतरुस्तव० १९)

सर्वरोगहरचक्र अष्टमूर्त्यात्मक '**शिवस्वरूप**' अष्टत्रिकोण में (अष्टार में) वशिनी, कामेश्वरी आदि वाग्देवताओं की पूजा का उल्लेख है। ये शक्तियाँ '**रहस्ययोगिनियाँ**' कही जाती हैं। ये देवियाँ चतुर्भुज हैं और इनके चारों करों में धनुष, बाण, पुस्तक और स्फटिक की माला है तथा इनका रंग (मूँगा) के समान है। यथा,

**चापेषुपुस्तकलसत्स्फटिकाक्षमालं बालप्रवालरुचिरं वशिनीप्रधानम् ।**
**सर्वादिरोगहरचक्रवरेऽष्टकोणे, वाग्देवताष्टकमहं सरहस्यमीडे ।।**

(कामकल्पतरुस्तव० २०)

तदन्तर अष्टमावरण में महात्रिकोण के बाहर आयुध (अस्त्र) देवताओं की अर्चा होती है। ये रक्तवस्त्रावृता हैं और इनके कर वर और अभय मुद्रा से सुशोभित हैं तथा पाश, अङ्कुश, धनुष और बाणों को अपने-अपने सिर में चिह्नस्वरूप धारण करती हैं। यथा-

**रक्ता वराभयकरा: शिरसा दधाना:, पाशाङ्कुशेषुधनुरायुधभूषणानि ।**
**श्रीमत् त्रिकोणबहिरायुधदेवता मां, रक्षन्तु संततमनन्त गुणाश्चतस्त्र: ।।**

(कामकल्पतरुस्तव० २१)

इसके अनन्तर सर्वसिद्धिप्रदचक्र महात्रिकोणों की सपर्या होती है। इसके अग्र, दक्ष और वाम कोणों में कामेश्वरी, वज्रेश्वरी और भगमालिनी की यथाक्रम पूजा होती है और बिन्दु में महाकामेश्वरी का अर्चन किया जाता है। त्रिकोण के तीन कोणों में कामरूप, पूर्णगिरि और जालन्धर पीठों का पूजन होता है और मध्य में उड्यानपीठ की सपर्या होती है। इस चक्र की देवियों को '**अतिरहस्य योगिनी**' कहते हैं। कामेश्वरी आदि देवियों का ध्यान निम्नलिखित है-

*कामेश्वरी का ध्यान*

**श्रीमत् त्रिकोणपुरतः स्फुरतीं त्रिनेत्रां**
**बालातपारुणतनुं तरुणेन्दुमौलिम् ।**
**पीयूषभाजनवराङ्कुशपाशहस्तां**
**कामेश्वरीं भगवतीं परिपूजयामि ।।** *(कामकल्प० २४)*

*वज्रेश्वरी का ध्यान*

**पाशाङ्कुशामृतकपालकमातुलुङ्ग**
**चापेषुसंगतकरामरुणां त्रिनेत्राम् ।**
**श्रीमत्त्रिकोणपरदैवतदक्षिणस्थां**
**वज्रेश्वरी भगवतीं परिपूजयामि ।।** *(कामकल्प० २५)*

*भगमालिनी का ध्यान*

**चन्द्राननां त्रिनयनां तरुणेन्दुचूडां**
**पाशाङ्कुशाक्षगुणपुस्तकशस्त्रहस्ताम् ।**
**श्रीमत्-त्रिकोणपरदैवतवामभागे**
**शुभ्रां भजे भगवतीं भगमालिनीं ताम् ।।** *(कामकल्प० २६)*

यहाँ पर ध्यान देने की बात है कि उक्त कामेश्वरी महाकामेश्वरी और नित्या-कामेश्वरी से भिन्न है।

महात्रिकोण के बिन्दु को **'बिन्दुचक्र'** कहते हैं। उसका नाम **'सर्वानन्दमय-चक्र'** है। परब्रह्मस्वरूप बिन्दुचक्र में महात्रिपुरसुन्दरी पराभट्टारिका की सपर्या होती है। महात्रिपुरसुन्दरी ही परापराऽतिरहस्ययोगिनी हैं।

श्रीयन्त्र के बिन्दु में देवी के अङ्गों में षडङ्ग युवतियों का तथा इसी त्रिकोण-बिन्दु में महानित्या का एवं इसके अनन्तर मध्यम त्रिकोण की दक्षिण, पूर्व और उत्तर की रेखाओं में नित्याओं का और तदन्तर दिव्यौघ, सिद्धौघ और मानवौघ गुरुजनों का यजन किया जाता है। इनका स्थान भगवती के पीछे मूल त्रिकोण की पूर्व रेखाओं के पास, विमला और जयिनी के बीच में, अरुणा वाग्देवता के निकट है। यहाँ पर दक्षिण से उत्तर की ओर तीन पंक्तियों का ध्यान कर प्रथम पंक्ति में सात दिव्य-

गुरुओं का, द्वितीय पंक्ति में चार सिद्ध गुरुओं का और तृतीय पंक्ति में आठ मानव गुरुओं का यजन होता है। तदन्तर प्रथम रेखा में परमेष्ठि गुरुमन्त्र से, दूसरी रेखा में परम गुरुमन्त्र से और तीसरी रेखा में स्वगुरुदेव के मन्त्र से तीनों गुरुदेवों का यजन किया जाता है। इसके अनन्तर आवरणार्चन प्रारम्भ होता है।

## सृष्टि, स्थिति और संहार-चक्र

श्रीयन्त्र के उक्त नव चक्र सृष्टि, स्थिति और संहार के द्योतक हैं। इनमें से बिन्दु, त्रिकोण और अष्टकोण- ये तीन चक्र '**संहारचक्र**' है। अन्तर्दशार, बहिर्दशार और चतुर्दशार- ये तीन '**स्थितिचक्र**' और अष्टदल, षोडशदल और भूपुर- ये तीन चक्र '**सृष्टिचक्र**' कहलाते हैं।

## अपने शरीर में श्रीचक्र की भावना

उच्चकोटि के साधक श्रीचक्र की भावना अपने शरीर में करते हैं अर्थात् साधक-शरीर स्वयं श्रीचक्र है। साधक का ब्रह्मरन्ध्र बिन्दुचक्र, मस्तक त्रिकोण, ललाट अष्टकोण, भ्रूमध्य अन्तर्दशार, कण्ठ बहिर्दशार, हृदय चतुर्दशार, कुक्षि वृत्त नाभि अष्टदल कमल, कटि अष्टदल के बाहर का वृत्त, स्वाधिष्ठान षोडशदल कमल, मूलाधार षोडशदल के बाहर का वृत्तत्रय (त्रिवृत्त), जानु भूपुर की प्रथम रेखा, जङ्घा भूपुर की द्वितीय रेखा, पाद (पैर) भूपुर की तृतीय रेखा है। साधक को यह अवश्य ज्ञातव्य है। इसको जानने वाला साधक शिव, विष्णु और ब्रह्मा के समान है। '**योगिनी-हृदय**' कहता है-

**त्रिपुरेशीमहायन्त्रं पिण्डाण्डात्मकमीश्वरि ।**
**यो जानाति स योगीन्द्रः स शम्भुः स हरिर्विधिः ।।**

अर्थात् '**यह श्रीयन्त्र पिण्डात्मक तथा ब्रह्माण्डात्मक है। जो साधक इस बात को जानता है, वह योगीन्द्र शिव, हरि (विष्णु) और ब्रह्मा के समान है।**'

## श्रीचक्र की ब्रह्माण्डात्मकता

उच्चतम कोटि के उपासक सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को (जगत् को) श्रीचक्रमय मानते हैं। अर्थात् श्रीयन्त्र अशेष ब्रह्माण्डमय है। तथाहि- बिन्दुचक्र सत्यलोक, त्रिकोण तपोलोक, अष्टकोण जनोलोक, अन्तर्दशार महर्लोक, बहिर्दशार स्वर्लोक, चतुर्दशार भुवर्लोक, प्रथम वृत्त भूलोक, अष्टदल अतल, अष्टदल के बाहर का वृत्त वितल, षोडशदल कमल सुतल, वृत्तत्रय तलातल, भूपुर की प्रथम रेखा महातल, द्वितीय रेखा रसातल और तृतीय रेखा पाताल है। ब्रह्मादि देवता, इन्द्रादि लोकपाल, सूर्यादि नवग्रह, अश्विन्यादि

सत्ताईस नक्षत्र, मेष-वृष आदि बारह राशियाँ, वासुकि आदि सर्प, यक्ष, वरुण, वैनतेय (गरुड़), मन्दार आदि वृक्ष, रम्भादि अप्सराओं का समूह, कपिल आदि सिद्ध-सङ्घ, वशिष्ठ आदि मुनीश्वर, कुबेर प्रमुख यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, किन्नर, विश्वावसु आदि गायक, ऐरावत आदि आठ दिग्गज, उच्चैःश्रवादि हय, सब प्रकार के आयुध, हिमालय आदि पर्वत, सातों समुद्र, नदियाँ, नगर और राष्ट्र- ये सब श्रीचक्र से उत्पन्न हुए हैं। अतः श्रीचक्र और ब्रह्माण्ड की एकता बराबर ध्यान करने योग्य है। इसका ध्यान करने वाला साधक **'योगीन्द्र'** कहलाता है। पिण्ड, ब्रह्माण्ड और श्रीचक्र की एकता का ज्ञान होना महत् पुण्यों का फल है। इसका ज्ञाता शिवरूप हो जाता है। लिखा भी है-

**पिण्डब्रह्माण्डयोर्ज्ञाता श्रीचक्रस्य विशेषतः।**
**ज्ञात्वा शम्भुफलावाप्तिर्नाल्पस्य तपसः फलम् ॥** *(योगिनीहृदये)*

'अर्थात् अपने शरीर को तथा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को श्रीचक्रस्वरूप जानना बड़े भारी तप का फल है। इन तीनों की एकता की भावना से शिवत्त्व प्राप्त होता है।'

## मन्त्र और यन्त्र की एकता

श्रीविद्या-पञ्चदशाक्षरी बीजमन्त्रों से ही **'श्रीयन्त्र'** अथवा **'श्रीचक्र'** बना है। अतः मन्त्र और यन्त्र एक ही वस्तु है। पञ्चदशी-मन्त्रान्तर्गत **'लकार'** पृथ्वी बीज है। इस बीज से भूपुर और उसमें स्थित देवता बने हैं। '**स**'कार चन्द्रमा है, जो कि षोडश-कलात्मक है। इसमें षोडशदल कमल और तदन्तर्गत देवताओं की उत्पत्ति हुई। '**ह**'कार अष्टमूर्ति शिव की संज्ञा है, अतः इससे अष्टदलकमल और तदन्तर्गत देवियों का प्रसार हुआ। '**ई**'कार भुवनेश्वरी बीज है और भुवनेश्वरी चतुर्दश भुवनों की (चौदह लोकों की) ईश्वरी हैं, अतः इस '**ई**'कार से चतुर्दशार और उसके देवताओं की उत्पत्ति मानी गयी है। 'ए'कार से दशावतार विष्णु स्वरूप बहिर्दशार और तदन्तर्गत सर्वसिद्धिप्रदादि देवियों के मण्डल का आविर्भाव हुआ। रेफ **'र'** वह्निबीज है, इससे दश कलाओं वाले अग्निरूप सदैवत अन्तर्दशार का प्रादुर्भाव हुआ। '**क**'कार अष्टमूर्त्यात्मक शिव का वाचक है, इससे अष्टकोण और उसकी अधिष्ठात्री वशिनी आदि देवियों की उत्पत्ति हुई। अर्धचन्द्र से त्रिकोण और उसके अन्तर्गत अर्थात् उसके कोणस्थ, कामेश्वरी, वज्रेश्वरी और भगमालिनी देवियों की उत्पत्ति हुई और बिन्दु से बिन्दुचक्र तथा उसकी अधिष्ठात्री (सर्वानन्दमय चक्राधीश्वरी)

श्रीललिता महात्रिपुरसुन्दरी (श्रीविद्या) प्रकट हुई। इस प्रकार श्रीचक्र श्रीविद्या के बीजाक्षरों से प्रादुर्भूत हुआ है। अतः लिखा भी है-

**अर्धमात्रा गुणान् सूते नादरूपा यतस्ततः।**
**त्रिकोणरूपा योनिस्तु बिन्दुना बैन्दवं भवेत्।**
**कामेश्वरस्वरूपं तद् विश्वाधारस्वरूपकम्।**
**श्रीचक्रं तु वरारोहे श्रीविद्यावीर्यसम्भवम्॥** *(ज्ञानार्णव)*

अर्थात् "नादरूपिणी '**अर्धमात्रा**' से त्रिकोणरूपिणी योनि उत्पन्न हुई है और नाद के ऊपर के बिन्दु से बिन्दुचक्र बना। वही बिन्दुचक्र बिन्दुस्वरूप कामेश्वर हैं, जो सम्पूर्ण विश्व के आधार रूप हैं। अतः हे पार्वती! श्रीचक्र श्रीविद्या-पञ्चदशी-मन्त्र के बीजाक्षरों से उत्पन्न हुआ है। श्रीशिवजी के कहने का तात्पर्य यह है कि मन्त्र और यन्त्र में भेद नहीं है।

उपर्युक्त ज्ञानात्मिका तन्त्र के आशयानुकूल '**श्रीत्रिपुरामहिम्नस्तोत्र**' में मुनिवर दुर्वासा ने लिखा है-

**श्रीचक्रं श्रुतिमूलकोष इति ते संसारचक्रात्मकं,**
**विख्यातं तदधिष्ठिताक्षरशिवज्योतिर्मयं सर्वतः।**
**एतन्मन्त्रमयात्मिकाभिररुणं श्रीसुन्दरीभिर्वृतं,**
**मध्ये बैन्दवसिंहपीठललिते त्वं ब्रह्मविद्या शिवे॥**

अर्थात् '**हे शिवे! संसारचक्रस्वरूप श्रीचक्र में स्थित बीजाक्षररूप शक्तियों से प्रकाशमान तथा मूलविद्या के नौ बीजमन्त्रों से प्रसूत, शोभाशालिनी आवरण-शक्तियों से परिवेष्टित, वेदों के मूल कारण, ओंकार के कोषरूप श्रीचक्र के मध्य त्रिकोण के बिन्दुचक्रस्वरूप सिंहासन में विराजमान तुम परब्रह्मात्मिका हो।**'

कहने का सारांश यह है कि सिंहासन के मध्य में श्रीललिता महात्रिपुर-सुन्दरी सुशोभित हैं और सिंहासन के चारों ओर अणिमादि अष्ट सिद्धियाँ, ब्राह्मी आदि अष्टमातृकाएँ, सर्वसंक्षोभिण्यादि ९ मुद्राशक्तियाँ, कामाकर्षिणी आदि १६ नित्यकलाएँ, अनङ्गकुसुमादि ८ शक्तियाँ, सर्वसंक्षोभिणी आदि १४ सम्प्रदाय-योगिनियाँ, सर्वसिद्धिप्रदा आदि १० कुलोत्तीर्ण योगिनियाँ, सर्वज्ञा आदि १० निगर्भ योगिनियाँ और वशिनी आदि रहस्ययोगिनियाँ विराजमान हैं।

## श्रीविद्या के बीजाक्षरों से संसार की उत्पत्ति

ऊपर दिखाया गया है कि पञ्चदशी मूल विद्याक्षरों से श्रीचक्र का आविर्भाव हुआ है। अब जिन लकार आदि बीजाक्षरों से श्रीचक्र के नौ चक्रों की उत्पत्ति हुई है, उन्हीं बीजाक्षरों से यह संसार चक्र भी बना है। यथा- **'लं'** पृथ्वी-बीज है। उसी से सम्पूर्ण पृथ्वी और उस पर होने वाले वृक्ष और पर्वत उत्पन्न हुये हैं तथा भगवती के एकपञ्चा-शत् पीठ, सर्वतीर्थ, अशेष तीर्थमयी गङ्गा तथा अन्य नदियाँ और पुण्यक्षेत्र आदि सब लकार (लं) से ही उत्पन्न हुये हैं। पञ्चदशी-मन्त्र स्थित सकार (सं) से चन्द्र, नक्षत्र, ग्रहमण्डल और राशियाँ प्रादुर्भूत हुई। अतएव **'नित्याषोडशिकार्णव'** तन्त्र-ग्रन्थ में लिखा है-

**गणेशग्रहनक्षत्रयोगिनीराशिरूपिणीम् ।**
**देवीं मन्त्रमयीं नौमि मातृकां पीठरूपिणीम् ।।**

मन्त्र-मध्यगत हकार **'हं'** आकाश-बीज है। उससे आकाश की और भुवनेश्वरी-बीज ईकार **'ई'** से चतुर्दश भुवनों की उत्पत्ति (विश्वोत्पत्ति) हुई। दशावतार विष्णु-स्वरूप एकार **'ए'** से विश्व के पालन करने में समर्थ वैष्णवी शक्तिरूपा है। रकार **'रं' 'वह्नि-बीज'** परंज्योतिःस्वरूपिणी (प्रकाशमयी) है। ककार **'क'** से कामदा अर्थात् सम्पूर्ण अभिलाषाओं की पूर्तिकारिणी और कामरूपिणी है। अर्धचन्द्र ( ँ) वह विश्वयोनि कहलाती है और बिन्दु से अर्थात् अनुस्वार के उपरिस्थित बिन्दु ( ं) से वह महाकामेश्वरी (महात्रिपुरसुन्दरी) शिवसाक्षिणी हैं।

श्रीचक्र के साथ कालचक्र और देशचक्र की समानता **'तन्त्रराज'** नामक तन्त्र के २८वें पटल में श्रीभगवान् सदाशिव ने स्वयं श्रीमुख से प्रतिपादित किया है। जिज्ञासु पाठक वहाँ पर देख सकते हैं। यहाँ पर लेखविस्तार-भय से उसे नहीं दिया गया।

**'श्रीविद्या नित्यार्चन'** के अनुसार विन्दुचक्र के बिन्दु में तीन बार यजन किया जाता है। इसका तात्पर्य तीन पृथक् ध्यानों से है।

प्रथम, प्रकाश और विमर्श के सामरस्य का ध्यान है। द्वितीय, काम-कला का ध्यान (चिन्तन) और तृतीय, चित्-शक्ति का ध्यान करना है।

## सृष्टि-क्रम और संहार-क्रम

पहले लिखा गया है कि श्रीचक्र नौ चक्रों से बना है। इन चक्रों की गणना सृष्टिक्रम और संहारक्रम से की जाती है। सृष्टिक्रम में बिन्दुचक्र से लेकर भूपुरपर्यन्त गणना होती है। संहार-क्रम में भूपुर से लेकर बिन्दुचक्र पर्यन्त गणना की जाती है।

श्रीचक्र परमेश्वर के बनाये हुये ब्रह्माण्ड और पिण्डाण्ड का निरूपण करता है, जिसका वर्णन पहले हो चुका है। पूजा के अवसर पर संहारक्रम को स्वीकार करने की प्रथा है। अतएव **'श्रीविद्या-नित्यार्चन'** में संहारक्रम के अनुसार ही लिखा गया है।

बिन्दुचक्र का नाम **'सर्वानन्दमय-चक्र'** है, इस चक्र से सब आनन्द और परमानन्दों का निरूपण होता है अर्थात् सब प्रकार का आनन्द प्राप्त होता है। आनन्द क्या वस्तु है? **'आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्।'** (तैत्ति.भृगु.६) **'एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति।'** इन उपनिषद् वाक्यों में आनन्द का वर्णन आया है। अतएव पद्धति में **'बिन्द्वभिन्नपरब्रह्मात्मके बिन्दुचक्रे।'** इस प्रकार लिखा है। अर्थात् बिन्दुचक्र परब्रह्म से अभिन्न है। इस चक्र में महाकामेश्वर और महाकामेश्वरी निवास करते हैं। **'तत्त्वमसि'** इस महावाक्य में **'तत्'** पद से निरूपित निर्गुण ब्रह्म महाकामेश्वर हैं और महाकामेश्वरी **'त्वं'** पद से निरूपित कूटस्थ साक्षी संवित् हैं। यहाँ पर **'वेदकवेद्ययोरहन्तेदंतयोः शक्तिशिवयोरभेदैक्यकविमर्शभूमिरेव बिन्दुचक्रमिति ज्ञेयम्।'** यह उद्धरण भी ध्यान देने योग्य है। अर्थात् **'बिन्दुचक्र ज्ञाता और ज्ञेय, अहन्ता और इदन्ता, प्रकाश और विमर्शस्वरूप शिवशक्ति के ऐक्य की भूमि है।'**

यह बिन्दुचक्र की कामकला है। यह शब्द और विचार से परे है। अतएव इस बिन्दुचक्र की योगिनी **'परापर रहस्य (अत्यन्त गुप्त) योगिनी'** कही जाती है।

इस बिन्दुचक्र की आवरण देवता केवल परदेवता ही है और वह सच्चिदानन्द-पराऽहन्ता है। इस चक्र की सिद्धि का नाम **'प्राप्तिसिद्धि'** है क्योंकि यहाँ से सब सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। अर्थात् यह सिद्धि लौकिक सिद्धियों के अतिरिक्त तुरीया-वस्थातीत निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति कराती है। सर्वयोनिमुद्रा शिव-शक्ति-सामरस्य अथवा जीव-ब्रह्मैक्य के कारण अनुभूत ब्रह्मानन्द का निरूपण करती है।

## तुरीया विद्या

षोडशी, महाषोडशी और सप्तदशी (महानाख्या सुन्दरी) निर्वाण-महात्रिपुरसुन्दरी का उपासक भी इसी सर्वानन्दमयचक्र में (बिन्दुचक्रमें) तुरीयाविद्या मन्त्र से तुरीयाम्बा का पूजन कर पुष्पाञ्जलि चढ़ाता है। इस चक्र की सिद्धि सर्वकामसिद्धि और मुद्रा का नाम **'सर्वत्रिखण्डामुद्रा'** है। तुरीयाविद्या तुरीयावस्था में अथवा सविकल्प समाधि में अनुभव की गयी जीव और ब्रह्म की एकता का अथवा शिव-शक्ति-सामरस्य का निरूपण करती है। इस तुरीयाविद्या को शास्त्र **'महापूर्तिकरी विद्या'** कहते हैं। इसी को

सर्वोच्च '**प्रकाश-श्रीविद्या**' कहते हैं और यह वह अवस्था है जिसमें सर्वव्यापिनी विमर्श-शक्ति भी महाप्रकाश में निमग्न हो जाती है। यही तुरीयाविद्या का वास्तविक अर्थ है।

## सर्वानन्दमय-चक्र

अद्वैतता का अनुभव ही सर्वानन्दमय-चक्र है, इसी को '**महोड्याणपीठ**' भी कहते हैं, अतएव श्रीललितासहस्रनाम में '**ओड्याणपीठनिलया, बिन्दुमण्डलवासिनी**' इस प्रकार के नाम श्रीविद्या महात्रिपुरसुन्दरी के आते हैं। यह तुरीयाम्बा तुरीया विद्या के अधिष्ठान का निरूपण करती है। यही परब्रह्म है, जो कि प्रकाश और विमर्श का संयोग है, यही अमृत का उच्चतम स्वरूप अर्थात् मोक्ष है।

## श्रीविद्या की उपासना के तीन क्रम

श्रीविद्या महात्रिपुरसुन्दरी की उपासना में निम्नलिखित तीन मत हैं-हयग्रीव, आनन्दभैरव और दक्षिणामूर्ति मत। हयग्रीव के मतानुसार श्रीयन्त्र की अर्चना दक्षिणाचार से होती है तथा इसमें (श्रीयन्त्रमें) त्रिवृत्त चक्र की अर्चना नहीं की जाती है और त्रिवृत्त लिखा भी नहीं जाता। इस पूजा में ललितासहस्रनाम, त्रिशती और शत नामों से कुङ्कुमार्चन का अधिक महत्त्व है।

आनन्दभैरव मत में श्रीललिता महात्रिपुरसुन्दरी को बिन्दुचक्र की नायिका मानकर पूजा करने से '**दक्षिणाचार**' माना जाता है, किन्तु यदि बिन्दुचक्र की नायिका त्रिपुरभैरवी को मानकर तथा बिन्द्वन्तर्गत चक्रान्तर भावना करके उस चक्र की नायिका श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी को मानकर सपर्या करने में '**वामाचार**' माना जाता है। कौलाचार में भी इसी क्रम से पूजा करने का विधान है। आनन्दभैरव मत में त्रिवृत्त चक्र तो लिखा जाता है किन्तु उसकी पूजा नहीं होती है।

दक्षिणामूर्ति मतमें त्रिवृत्त लिखा जाता है तथा उसकी पूजा भी की जाती है। यह क्रम सर्वोत्तम माना जाता है। इस क्रम में कुलाचार से ही पूजा हो सकती है।

यह ध्यान रखने की बात है कि उक्त तीनों मतों में सृष्टिक्रम में (प्रातःसन्ध्या में), स्थितिक्रम में (मध्याह्न-समय में) तथा संहार-क्रम में (सायंकाल में) पूजा होती है।

इस दक्षिणामूर्ति-क्रम के सृष्टिक्रम में बिन्दुचक्र से भूपुर-पर्यन्त, स्थितिक्रम में भूपुर चक्र से अष्टदल चक्र पर्यन्त तथा बिन्दुचक्र से चतुर्दशार-चक्रपर्यन्त सपर्या होती है। संहार-चक्र में भूपुर-चक्र से बिन्दु-चक्रपर्यन्त अर्चन होता है।

## श्रीयन्त्र का आम्नाय-विभाजन

**भूवृत्तशशिनागाढ्यं सृष्टिचक्रं वरानने। मनुदिग्दशकैर्युक्तं स्थितिचक्रं शुभावहम्।।**
**वस्वानिबिन्दुसंयुक्तं चक्रं संहारकं स्मृतम्। सर्वेश्वानाख्यचक्रं तु भावयेत् साधकोत्तमः।।**

*(तांत्रिक-उपासना-दर्पण, द्वितीय भाग)*

अर्थात् भूपुर, त्रिवृत्त, षोडशदल और अष्टदल-इन चार चक्रों का समष्टिरूप पूर्वाम्नायात्मक सृष्टिचक्र, चतुर्दशार, बहिर्दशार और अन्तर्दशार-ये तीन चक्र दक्षिणाम्नायात्मक स्थितिचक्र, अष्टार, त्रिकोण तथा बिन्दुचक्र पश्चिमाम्नायात्मक संहारचक्र होता है।

**'दक्षिणामूर्ति'** मत में श्रीचक्रावरण-पूजा की सृष्टिक्रम में, स्थितिक्रम में स्थितिचक्र में और संहारक्रम में संहारचक्र में पूजा की विश्रान्ति होती है तथा बिन्दु से भूपुरपर्यन्त सब चक्रों का समष्टिरूप उत्तराम्नायात्मक **'अनाख्याचक्र'** बनता है। तदन्तर **'बिन्द्वन्तर्गत चक्र'** षड्डाकिनी विद्या, पञ्चपञ्चिका विद्या तथा षडध्व इत्यादि सब मिलकर बिन्दुचक्र से भूपुर-चक्रपर्यन्त के समस्त चक्रों का समष्टिरूप ऊर्ध्वाम्नायात्मक भासा-चक्ररूप बनता है।

दक्षिणामूर्ति मत की श्रीचक्रावरण-पूजा में पञ्चधा आम्नाय पूजा होती है। तीन प्रकार दिखाये गये हैं। चौथा प्रकार सर्वाधिकार अर्थात् जगदम्बिका श्रीविद्या के सर्वाम्नायों की चेतन सत्तारूप और पाँचवाँ षडन्वय शाम्भवविद्या अर्थात् मूलसमष्टिरूपिणी श्रीविद्या के षट्चक्र-स्फुरणसत्तारूप सपर्या होती है।

ब्रह्मचारियों के लिये सृष्टिक्रम से, गृहस्थ साधकों के लिये स्थितिक्रम में तथा गृहस्थाश्रम को स्वीकार न करने वाले ब्रह्मचारियों और वानप्रस्थाश्रमियों के लिये संहारक्रम से अर्चन करना विहित है।

उक्त क्रमानुसार क्रमार्चन करने वाले साधक संध्यात्रय में सृष्टि, स्थिति और संहारक्रम से अर्चन कर, निशीथिनी में तुरीय संध्यारूप से पूर्ण श्रीयन्त्र को तेजोमय तुरीया श्रीविद्या की भावना कर, महानिर्वाणभैरव तथा निर्वाणसुन्दरी की समर्चना किया करते हैं।

## पूजायन्त्र

पूजा के लिये सोना, चाँदी और ताँबे का श्रीयन्त्र क्रम से उत्तम, मध्यम और अधम माना गया है। पूजा करने का फल ताम्र में शतगुण, रौप्य में कोटिगुण, स्वर्ण और स्फटिकयन्त्र में अनन्तगुणा माना गया है। धातु का यन्त्र एक तोले

से सात-आठ तोले तक बनाया जा सकता है। किंतु स्फटिक और मरकत आदि मणियों के बने हुये यन्त्र के लिये कोई नियम नहीं है।

रुद्रयामल में लिखा है कि मूँगा, पद्मराग, नीलम, वैदूर्य, स्फटिक तथा मरकतमणि के यन्त्र में पूजा का फल अकथनीय गुणवाला होता है।

गौरी यामल में श्रीयन्त्र का प्रस्तार भूपृष्ठ, कूर्मपृष्ठ, पद्मपृष्ठ और मेरुपृष्ठ-भेद से चार प्रकार दर्शाया है। भूप्रस्तार (भूपृष्ठ) में निम्न रेखायें, कूर्मपृष्ठ और पद्मपृष्ठ यन्त्र ऊर्ध्वरेखामय होते हैं। धातुमय यन्त्रों के विषय में लिखा है कि मनमाने तौल के न होने चाहिये, अन्यथा '**स्वेच्छातोलं नरः कृत्वा प्रत्यवायं समश्नुते।**'- अर्थात् 'मनमाने तौल से बनवाकर उपासक प्रत्यवाय को प्राप्त होता है।'

यन्त्र का आवाहन और प्राणप्रतिष्ठा अचर, चर और धारणयोग्य भेद से तीन प्रकार की होती है। अचर प्राणप्रतिष्ठा में यन्त्र स्थापित रहता है, उठाया नहीं जाता। चर प्राणप्रतिष्ठा में पवित्रता के साथ यन्त्र अपने साथ स्थानान्तर में ले जाया जा सकता है। धारणयोग्य प्राणप्रतिष्ठा में यन्त्र पूजाकाल के अतिरिक्त सर्वथा धारण किया जाता है। केवल पूजा के समय वह उतारा जाता है। जब पुनः देवता को अपने में लीन कर देते हैं, तब यन्त्र को धारण कर लेते हैं।

## श्रीविद्या

श्रीविद्यापञ्चदशाक्षरी मन्त्र के संबंध में '**चतुःशती**' ग्रन्थ का वचन निम्न लिखित है-

**मूलध्यानं हंसबीजं सेव्यसेवकभेदकम्।**
**तेजः सूक्ष्ममभेदं हि सेव्यसेवकवर्जितम्॥**
**भावातीतं हि यद् ध्यानं सोऽहं ज्ञानात् परं शिवे।**
**यस्य यस्य पदार्थस्य या या शक्तिरुदीरिता॥**
**सा तु सर्वेश्वरी देवी स सर्वोऽपि महेश्वरः।**
**व्याप्ता पञ्चदशार्णैर्या विद्या भूतगुणात्मिका॥**
**पञ्चभिश्च तथा षड्भिश्चतुर्भिरपि चाक्षरैः।**
**स्वरव्यंजनभेदेन सप्तविंशप्रभेदिनी॥**
**सप्तविंशप्रभेदेन षट् - त्रिंशत्तत्त्वरूपिणी।**
**तत्त्वातीतस्वभावा च विद्यैषा भाव्यते सदा॥**

अर्थात् **'हंस'** बीज देवता (सेव्य) और सेवक के भाव को लेकर मन्त्र के स्थूल ध्यान को बतलाता है, अर्थात् पञ्चदशी-मन्त्र का प्रथम अर्थ साधक को (हंस) जीवात्मा और श्रीविद्या (श्री) को परमात्मा समझने के लिये सगुण ध्यान को दर्शाता है।

सूक्ष्म ध्यान में (तेजोध्यान) सेव्य-सेवकभाव मिट जाता है। अतः वह अभेद-रूप है। अर्थात् साधक का आत्मा और श्री एक ही वस्तु है, दो नहीं। यह निर्गुण ध्यान हुआ।

भावातीत ध्यान में साधक अपने को **'सोऽहं'** ज्ञान से परे शून्य रूप अर्थात् नाहं-भाव को धारण करता है अर्थात् अपने आत्मा को भी भूल जाता है। केवल अनुभवगम्य ध्यानरूप होता है।

जिस-जिस पदार्थ की जो शक्ति है वह सब सर्वेश्वरी श्रीविद्या है और जो जो पदार्थ शक्तिवाले हैं सब महेश्वर स्वरूप हैं। वह सर्वेश्वरी (श्रीविद्या-पञ्चदशी) पञ्चभूत गुण-स्वरूपिणी है अर्थात् पृथ्वी के-शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, पाँच गुण, जल के-शब्द, स्पर्श, रूप और रस चार गुण, तेज के-शब्द, स्पर्श और रूप तीन गुण, वायु के-शब्द और स्पर्श दो गुण और आकाश का एक गुण शब्द सब जोड़कर पञ्चदश (१५) गुणात्मिका, पंद्रह अक्षरवाली पञ्चदशी विद्या (पञ्चदशाक्षरी) हुई। प्रथम कूट में पाँच अक्षर, दूसरे में छः अक्षर और तीसरे में चार अक्षर (पञ्चदश अक्षर) तथा इन कूटाक्षरों के (पाँच, छः और चार अक्षरों के) स्वर-व्यंजन भेद से (अर्थात् इनके स्वर और व्यंजन को जोड़कर) सत्ताईस भेद बनें। उनके भेदों के द्वारा पुनः यह पञ्चदशी-विद्या तत्त्वातीत-स्वरूपिणी हुई अर्थात् इसकी भावना तत्त्वातीता की जाती है। (३६ तत्त्वों से परे मानी जाती है।)

इसका यथार्थ अर्थ मन्त्र को स्पष्ट करने से समझने में आयेगा। यथा- पञ्चदशी-विद्या के १५ अक्षरों के तीन खण्ड हैं।

प्रथम कूट के पाँच अक्षर हैं। उसमें चार व्यंजन, तीन स्वर, एक नाद और एक बिन्दु है। सब मिलाकर नौ हुए। द्वितीय कूट में छः अक्षर हैं। उसमें सात व्यंजन, एक स्वर, एक नाद और एक बिन्दु है। सब जोड़कर दस हुये। तीसरा कूट चार अक्षर का है, उसमें पाँच व्यंजन, एक स्वर, एक नाद और एक बिन्दु है। सब जोड़कर आठ हुये। इस प्रकार सब सत्ताईस हुये। प्रत्येक कूट में अक्षरों के पृथक्-पृथक् तीन-तीन तत्त्व उत्पन्न हुये। तदन्तर ३X३=९ नौ तत्त्व हुये। अब नौ और सत्ताईस का योग ३६ छत्तीस तत्त्व हो गये।

उपासना द्वैतवाद और अद्वैतवाद अर्थात् कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड के भेद से दो प्रकार की है। कर्मकाण्ड में शैव, शाक्त, सौर, गाणपत्य आदि भेद से उपासना कई प्रकार की है। शैव, शाक्त, सौर आदि दर्शनों की श्रीयन्त्र में पूजा होने के कारण कर्मकाण्डानुसार पूजा-विधान होने से श्रीविद्योपासना द्वैतवाद जैसी प्रतीत होती है।

श्रीयन्त्र में त्रिकोणचक्र चिद्रूप, बैन्दव चक्र आनन्दरूप तथा भावनाज्ञेय बिन्द्वन्तर्गत महाबैन्दव-चक्र सद्रूप है, अतः सच्चिदानन्द के मनन करने से श्रीविद्योपासना अद्वैतवाद जैसी प्रतीत होती है। अतः 'श्रीचक्रार्चन' के अनुसार श्रीविद्योपासना द्वैताद्वैतवाद-स्वरूप ठहरती है।श्रीविद्योपासना भूतशुद्ध्यादि-क्रम के अनन्तर भावना के लिये-

**अहं देवी न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक् ।**
**सच्चिदानन्दरूपोऽहमात्मानमिति भावयेत् ।।**

अर्थात् मैं स्वयं देवीरूप हूँ, दूसरा नहीं हूँ। मैं स्वयं ब्रह्म ही हूँ, शोक-संतप्त होने वाला जीव नहीं हूँ। मैं सच्चिदानन्दस्वरूप हूँ। जो तुम हो वह मैं हूँ और मैं ही तुम हो, तुम्हारा शरीर संविन्मात्र है। तुममें और मुझमें जो भेद है, वह शीघ्र आज्ञा के बल से नष्ट हो जाय। यद्यपि मैं इस भयंकर संसार-सागर से पार हो गया हूँ और मेरा कोई कार्य शेष नहीं है, तो भी हे माता! अपने पूजन के लिये मुझे आज्ञा प्रदान करो।

पूजा के अन्त में श्रीविद्योपासक भावना करता है कि मैं पशुजन से विमुख श्रीभैरवी के आश्रित हूँ, सर्वदा गुरुचरणों में रत शिव हूँ। मैं स्वयं शिव हूँ और भक्तिस्वरूप हूँ। मैं देव आम्नायनायिका दनुज, यक्ष, मनुष्य सब कुछ हूँ। पूज्य और पूजक मैं स्वयं हूँ। मैं पूजाविद् हूँ और पूजारसमय भी मैं ही हूँ।

इस प्रकार भावना द्वारा **'जीवन्मुक्ताश्च कौलिकाः'** इस आगमवचन की चरितार्थता होती है।

श्रीयन्त्र के भूपुर में तीव्रजागृतावस्था, वृत्तत्रय में मन्दजागृतावस्था, षोडशदल में स्वप्नावस्था और अष्टदल में सुषुप्तावस्था का समावेश किया जाता है। भूपुर, वृत्तत्रय, षोडशदल और अष्टदल-ये चार चक्र पूर्वाम्नायात्मक हैं। ये पूर्ण अज्ञान की चार अवस्थायें साधारण प्राणी की सी हैं।

भीतर के चक्रों में ज्ञानप्राप्ति की साधन-स्वरूपा सप्तभूमिकाओं का समावेश होता है। ये तीन चतुर्दशार, बहिर्दशार और अन्तर्दशार चक्र दक्षिणाम्नायात्मक

चक्र हैं। पुनः अकार चक्र में सत्त्वापत्ति, त्रिकोणचक्र में असंशक्ति और बिन्दुचक्र में पदार्थाभाविनी का समावेश होता है। ये तीन चक्र अष्टार त्रिकोण और बिन्दुचक्र पश्चिमाम्नायात्मक चक्र हैं। इन पूर्वोक्त दश चक्रों का समष्टिरूप ज्ञानात्मक उत्तराम्नायात्मक चक्र होता है। तथा उत्तराम्नायात्मकचक्र में महाबैन्दव चक्र अर्थात् बिन्द्वन्तर्गत-चक्र मिलकर पूर्णाज्ञा नामक ऊर्ध्वाम्नायात्मक-चक्र बन जाता है और उसी महाबैन्दव चक्र में तुर्यगा का समावेश होने से ज्ञानकाण्डोपासना विषय बन जाता है। अर्थात् ज्ञानकाण्ड द्वारा श्रीचक्रोपासना होती है।

कर्मकाण्ड के विषय में श्रीचक्र के किस-किस चक्र में किस-किस दर्शन-शास्त्र का समावेश होता है, यह बात दिखायी जाती है। भुपूर में चार्वाकदर्शन, वृत्तत्रय में (त्रिवृत्तमें) स्मृति-पुराणादि-दर्शन, षोडशदल में बौद्ध-दर्शन, अष्टदल में गाणपत्य-दर्शन, चतुर्दशार में सांख्य-मीमांसा, न्याय-वैशेषिक पातञ्जल-वेदान्तादि दर्शना, बहिर्दशार में वैदिक-दर्शन, अन्तर्दशार में सौर-दर्शन, अष्टार (अष्टकोण) में वैष्णव-दर्शन, बिन्दु में शैवदर्शन और महाबैन्दव-चक्र में कौलदर्शन का समावेश होता है।

पूर्वाम्नाय में अज्ञानावस्था के कारण देवता को स्वामी, माता मानकर और अपने को दास, पुत्र आदि मानकर उपासना होती है और **'पापोऽहं पापकर्माहं' 'ताप-त्रयाग्निसंतप्तं त्राहि मां परमेश्वरि।'** अथवा परमेश्वर! कहा जाता है।

दक्षिणाम्नाय में ज्ञानभूमिका के पूर्वार्ध से इष्टदेवता को भैरव की शक्ति और अपने को भैरवरूप की भावना से उपासना होती है।

पश्चिमाम्नाय में ज्ञानभूमिका के उत्तरार्ध होने से इष्टदेवता को तथा अपने आपको एक ही मानकर परमशक्तिरूप बनकर **'रचितयुवतिवेशास्मद्धिया ध्यायते सः।'** भावना की जाती है। **'परोऽहमपरश्चाहं परापरमयोऽप्यहम्।'** अर्थात् पर भी मैं ही हूँ और अपर भी मैं ही हूँ तथा परापरमय भी मैं ही हूँ। अन्य नहीं है।

(लेखक- कुलमार्तण्ड राजगुरु **पं. श्री योगीन्द्र कृष्ण दौर्गादत्ति शास्त्री जी**, विद्याभूषण, साहित्य रत्न)

*......कल्याण से साभार*